रामचरित्मानस

बालकाण्ड

मंगलाचरण गुरु वंदना ब्राह्मण-संत वंदना खल वंदना

*** वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥1॥
भावार्थ:
अक्षरों, अर्थ समूहों, रसों, छन्दों और मंगलों को करने वाली सरस्वतीजी और गणेशजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥
*** भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः
स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥2॥
भावार्थ:
श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वतीजी और श्री शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते॥2॥
*** वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्। यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥3॥
भावार्थ:
ज्ञानमय, नित्य, शंकर रूपी गुरु की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है॥3॥
*** सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥4॥
भावार्थ:
श्री सीतारामजी के गुणसमूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले, विशुद्ध विज्ञान सम्पन्न कवीश्वर श्री वाल्मीकिजी और कपीश्वर श्री हनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ॥4॥
*** उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥5॥
भावार्थ:
उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली श्री रामचन्द्रजी की प्रियतमा श्री सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥5॥
*** यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥6॥
भावार्थ:

जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिए एकमात्र नौका हैं, उन समस्त कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहलाने वाले भगवान हरि की मैं वंदना करता हूँ॥6॥

*** नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति॥7॥

भावार्थ:

अनेक पुराण, वेद और (तंत्र) शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथजी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करता है॥7॥ सोरठा :

*** जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥1॥

भावार्थ:

जिन्हें स्मरण करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं, जो गणों के स्वामी और सुंदर हाथी के मुख वाले हैं, वे ही बुद्धि के राशि और शुभ गुणों के धाम (श्री गणेशजी) मुझ पर कृपा करें॥1॥

*** मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन। जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥2॥

भावार्थ:

जिनकी कृपा से गूँगा बहुत सुंदर बोलने वाला हो जाता है और लँगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है, वे कलियुग के सब पापों को जला डालने वाले दयालु (भगवान) मुझ पर द्रवित हों (दया करें)॥2॥

*** नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन। करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥3॥

भावार्थ:

जो नीलकमल के समान श्यामवर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लाल कमल के समान जिनके नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागर पर शयन करते हैं, वे भगवान् (नारायण) मेरे हृदय में निवास करें॥3॥

*** कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन। जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥4॥

भावार्थ:

जिनका कुंद के पुष्प और चन्द्रमा के समान (गौर) शरीर है, जो पार्वतीजी के प्रियतम और दया के धाम हैं और जिनका दीनों पर स्नेह है, वे कामदेव का मर्दन करने वाले (शंकरजी) मुझ पर कृपा करें॥4॥

गुरु वंदना

*** बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि। महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥5॥
भावार्थ:
मैं उन गुरु महाराज के चरणकमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य किरणों के समूह हैं॥5॥
चौपाई :
*** बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥ अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥1॥
भावार्थ:
मैं गुरु महाराज के चरण कमलों की रज की वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुंदर स्वाद), सुगंध तथा अनुराग रूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भव रोगों के परिवार को नाश करने वाला है॥1॥
*** सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥ जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥2॥
भावार्थ:
वह रज सुकृति (पुण्यवान् पुरुष) रूपी शिवजी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनन्द की जननी है, भक्त के मन रूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है॥2॥
*** श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥ दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥3॥
भावार्थ:
श्री गुरु महाराज के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने वाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं॥3॥
*** उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥ सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥4॥
भावार्थ:
उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं श्री रामचरित्र रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में है,

सब दिखाई पड़ने लगते हैं-॥4॥

दोहा :

*** जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥1॥

भावार्थ:

जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत सी खानें देखते हैं॥1॥

चौपाई :

*** गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥ तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥1॥

भावार्थ:

श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत अंजन है, जो नेत्रों के दोषों का नाश करने वाला है। उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसाररूपी बंधन से छुड़ाने वाले श्री रामचरित्र का वर्णन करता हूँ॥1॥

ब्राह्मण-संत वंदना

*** बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥ सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥2॥

भावार्थ:

पहले पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ, जो अज्ञान से उत्पन्न सब संदेहों को हरने वाले हैं। फिर सब गुणों की खान संत समाज को प्रेम सहित सुंदर वाणी से प्रणाम करता हूँ॥2॥

*** साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥ जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥3॥

भावार्थ:

संतों का चरित्र कपास के चरित्र (जीवन) के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपास की डोडी नीरस होती है, संत चरित्र में भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है, कपास उज्ज्वल होता है, संत का हृदय भी अज्ञान और पाप रूपी अन्धकार से रहित होता है, इसलिए वह विशद है और कपास में गुण (तंतु) होते हैं, इसी प्रकार संत का चरित्र भी सद्गुणों का भंडार होता है, इसलिए वह गुणमय है।) (जैसे कपास का धागा सुई के किए हुए छेद को अपना तन देकर ढँक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट

सहकर भी वस्त्र के रूप में परिणत होकर दूसरों के गोपनीय स्थानों को ढँकता है, उसी प्रकार) संत स्वयं दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढँकता है, जिसके कारण उसने जगत में वंदनीय यश प्राप्त किया है॥3॥

*** मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥ राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥4॥

भावार्थ:

संतों का समाज आनंद और कल्याणमय है, जो जगत में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संत समाज रूपी प्रयागराज में) राम भक्ति रूपी गंगाजी की धारा है और ब्रह्मविचार का प्रचार सरस्वतीजी हैं॥4॥

*** बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी॥ हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥5॥

भावार्थ:

विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) रूपी कर्मों की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली सूर्यतनया यमुनाजी हैं और भगवान विष्णु और शंकरजी की कथाएँत्रिवेणी रूप से सुशोभित हैं, जो सुनते ही सब आनंद और कल्याणों को देने वाली हैं॥5॥

*** बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥ सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥6॥

भावार्थ:

(उस संत समाज रूपी प्रयाग में) अपने धर्म में जो अटल विश्वास है, वह अक्षयवट है और शुभ कर्म ही उस तीर्थराज का समाज (परिकर) है। वह (संत समाज रूपी प्रयागराज) सब देशों में, सब समय सभी को सहज ही में प्राप्त हो सकता है और आदरपूर्वक सेवन करने से क्लेशों को नष्ट करने वाला है॥6॥

*** अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देह सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥7॥

भावार्थ:

वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल देने वाला है, उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है॥7॥

दोहा :

*** सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग। लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥2॥

भावार्थ:

जो मनुष्य इस संत समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझतेहैं और फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- चारों फल पा जाते हैं॥2॥

चौपाई :

*** मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥ सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥1॥

भावार्थ:

इस तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल ऐसा देखने में आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है॥1॥

*** बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥ जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥2॥

भावार्थ:

वाल्मीकिजी, नारदजी और अगस्त्यजी ने अपने-अपने मुखों से अपनी होनी (जीवन का वृत्तांत) कही है। जल में रहने वाले, जमीन पर चलने वाले और आकाश में विचरने वाले नाना प्रकार के जड़-चेतन जितने जीव इस जगत में हैं॥2॥

*** मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥ सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥3॥

भावार्थ:

उनमें से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पाई है, सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिए। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है॥3॥

*** बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥ सतसंगत मुद मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला॥4॥

भावार्थ:

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्री रामजी की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल है॥4॥

*** सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥ बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥5॥

भावार्थ:

दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है (सुंदर सोना बन जाता है), किन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी

साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं। (अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के संग में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।)॥5॥

*** बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥ सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥6॥

भावार्थ:

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पण्डितों की वाणी भी संत महिमा का वर्णन करने में सकुचाती है, वह मुझसे किस प्रकार नहीं कही जाती, जैसे साग-तरकारी बेचने वाले से मणियों के गुण समूह नहीं कहे जा सकते॥6॥

दोहा :

*** बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ। अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥3 (क)॥

भावार्थ:

मैं संतों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु! जैसे अंजलि में रखे हुए सुंदर फूल (जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रखा उन) दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगंधित करते हैं (वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं।)॥3 (क)॥

*** संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु। बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥ 3 (ख)

भावार्थ:

संत सरल हृदय और जगत के हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनय को सुनकर कृपा करके श्री रामजी के चरणों में मुझे प्रीति दें॥ 3 (ख)॥ खल वंदना

चौपाई :

*** बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥ पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥1॥

भावार्थ:

अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है॥1॥

*** हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥ जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर

हित घृत जिन्ह के मन माखी॥2॥

भावार्थ:

जो हरि और हर के यश रूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए राहु के समान हैं(अर्थात जहाँ कहीं भगवान विष्णु या शंकर के यश का वर्णन होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं।जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हित रूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने-बनाए काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं)॥2॥

***तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥ उदय केत सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥3॥

भावार्थ:

जो तेज (दूसरों को जलाने वाले ताप) में अग्नि और क्रोध में यमराज के समान हैं, पाप और अवगुण रूपी धन में कुबेर के समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभी के हित का नाश करने के लिए केतु (पुच्छल तारे) के समान है और जिनके कुम्भकर्ण की तरह सोते रहने में ही भलाई है॥3॥

*** पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥ बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥4॥

भावार्थ:

जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरों का काम बिगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को (हजार मुख वाले) शेषजी के समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराए दोषों का हजार मुखों से बड़े रोष के साथ वर्णन करते हैं॥4॥

*** पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥ बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥5॥

भावार्थ:

पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानों से दूसरों के पापों को सुनते हैं। फिर इन्द्र के समान मानकर उनकी विनय करता हूँ, जिनको सुरा (मदिरा) नीकी और हितकारी मालूम देती है (इन्द्र के लिए भी सुरानीक अर्थात् देवताओं की सेना हितकारी है)॥5॥

*** बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥6॥

भावार्थ:

जिनको कठोर वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरों के दोषों को देखते हैं॥6॥

दोहा :

*** उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति। जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥4॥

भावार्थ:

दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है॥4॥

चौपाई :

*** मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥ बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥1॥

भावार्थ:

मैंने अपनी ओर से विनती की है, परन्तु वे अपनी ओर से कभी नहीं चूकेंगे। कौओं को बड़े प्रेम से पालिए, परन्तु वे क्या कभी मांस के त्यागी हो सकते हैं?॥1॥ **अगला पेज...**

रामचरित्मानस

बालकाण्ड

मंगलाचरण

*** गुरु वंदना

*** ब्राह्मण-संत वंदना

*** खल वंदना